प्राचीन भारत में शिक्षक एवम् शिष्य सम्बन्ध

डॉ. पंकज श्रीवास्तव

सह आचार्य
जे0पी0एस0 महाविद्यालय,
इलाहाबाद

प्राचीन काल में शिक्षक अपने शिष्य के लिए पूर्ण ज्ञानी और विद्वान होता था। वह शिष्य को मुक्ति का दिग्दर्शन कराने वाला सुज्ञानी होता था।[1] वाक्चातुर्य भाषण–पटुता प्रत्युत्पन्न मतित्व, तार्किकता और रोचक कथाओं में दक्ष तथा ग्रन्थों का अर्थ करने में वह आसु पण्डित और वक्ता होता था।[2]

शिक्षक की योग्यता उसके स्वाध्याय और प्रवचन में निहित थी किन्तु इसके साथ–साथ उसमें अनुशासन, सत्याचरण, सत्यभाषण, कष्ट सहिष्णुता, संयक और चित्त की एकाग्रता का होना भी अनिवार्य था। उसका रहन–सहन गरिमामय हो तथा वर्षा एवं शरद ऋतुओं में वह स्त्री से अलग ब्रह्मचारी के रूप में रहता था। वह चारपाई पर अथवा लेटे–लेटे अध्ययन नहीं करता था। इसके अतिरिक्त वह माला या अनुलेपन से भी अपने शरीर का अलंकरण नहीं करता था। वह मध्य रात्रि के पश्चात नहीं सोता था और उसी समय अपने शिष्य को निर्देश देता था तथा स्वयं स्वाध्याय में लीन हो जाता था। शिक्षक अपने पुत्र और अन्तेवासी को एक ही कोटि में रखता था।[3] कालान्तर में कभी–कभी गुरू अपनी पुत्रियों के लिए अपने शिष्यों में से योग्य शिष्य को पति चुन लेते थे। इस प्रकार के अनेक उदाहरण जातको से भी मिलते हैं। गुरू–शिष्य के सम्बन्ध को लेकर पाणिनि का यह कथन उपयुक्त है कि दोनों एक दूसरे की परस्पर छाते के समान रक्षा करते थे।[4]

वैदिक युग में भी शिष्यों को उनकी रूचि के अनुसार शिक्षा प्रदान की जाती थी और उनके व्यवसाय का निर्धारण किया जाता था। शिक्षक उसके अध्ययन की अभिरूचि और उसकी वृत्ति का निरीक्षण करता था और संतुष्ट होने के पश्चात् उसे शिष्य परम्परा में गृहीत करता था।[5] ऐसे शिष्यों को अपने गुरूकुल में स्थान देने के पहले सर्वप्रथम शिक्षक उसके आचरण और शील के विषय में निरीक्षण करके आश्वस्त होता था तत्पश्चात् उसे उपनयन विधि के अनुसार बह्मचारी बनाकर गुरूकुल में ग्रहीत करता था।

मनु के अनुसार, 'आचार्य–पुत्र, सेवा करने वाला, अन्य विषय की शिक्षा देने वाला, धर्मात्मा पवित्र, बांधव, ज्ञान के ग्रहण धारण में समर्थ, धन प्रदान करने वाला हिताभिलाषी और स्वजातीय, इन दस विशेषताओं से युक्त छात्र गुरू द्वारा धर्मानुसार पढ़ाने योग्य थे। सदाचारी प्रतिभावान और सुयोग्य शिष्य को चुनना गुरू की कुशलता का द्योतक था।[6] यह गुरू की विशेष कुशलता होती थी जब वह मन्दबुद्धि छात्र के मस्तिष्क में ज्ञान का मंत्र फूंक सकने में समर्थ होता था।[7]

Scanned by CamScanner

शिष्य अपने गुरू का सर्वदा सम्मान और आदर करता था। ब्रह्मचर्य का पालन करता उसका परम कर्तव्य था इसका पालन करने वाले में ही तेजोमय ब्रह्म और देवता अधिवास करते थे।[8] समिधा, मेखला, मृगचर्म आदि धारण करते हुए ब्रह्मचारी अपने व्रतों का पालन करता था। वह लम्बे बाल रखता था तथा भ्रम और तप के प्रभाव से लोकों को समुन्नत करता था।[9] शिष्य आचार्य कुल में रहते हुए वह आचार्य के लिए भिक्षाटन करता था। आचार्य के लिए गो सेवा करता था।[10] जब वह आचार्य का गोचारण करता था तब वह स्वच्छ वायु और सुन्दर प्रकृति में भ्रमण करके वातातपिक जीवन जीता था।[11] वह गुरू की निन्दा नहीं करता था ने सुनता था, साथ ही अपने तप से आचार्य को तृप्त करता था।[12] गुरू की त्रुटियों को शिष्य अत्यन्त विनयपूर्वक एकान्त में उसे बताता था।[13] वैसे शिष्य के लिए यह स्वतन्त्रता थी कि वह धर्मच्युत गुरू की आज्ञा न माने।[14] इसके विपरीत अगर शिष्य कोई पाप करता था तो उसके लिए आचार्य ही उत्तरदायी होता था।[15]

निःशुल्क, सशुल्क एंव वैकल्पिक तीन प्रकार की ग्रह शिक्षा प्रणाली गुरूकुलों के अतिरिक्त गावों के गुरू गृहों में भी प्रदान की जाती थी। इसके अतिरिक्त राज्य परिवारों, या विशिष्ट परिवारों में अध्यापकों की नियुक्ति कर अध्यापन कराया जाता था। अध्यापन कार्य करने वाले अध्यापकों को तीन भागों में विभाजित किया गया था जो क्रमशः अपनी योग्यताओं के आधार पर आचार्य, उपाध्याय, और गुरू नाम से सम्बोधित होते थे । इसके अतिरिक्त कुलपति भी होते थे परन्तु इनकी संख्या अत्यल्प थी।

प्रायः शिष्य आचार्य को ब्रह्म की मूर्ति के समान मानता था।[16] इसी रूप में वह गुरू की सेवा करता था वह अपने गुरू के सुश्रूषा करना उसका प्रधान कर्तव्य था।[17] वह पूर्णरूपेण शिक्षक के कहने या न कहने पर अध्ययन की ओर प्रवृत्त होता था अथवा अन्य कार्य करता था तथा वह आचार्य के हित में सर्वदा यत्नशील रहता था।[18] वह दिन–रात गुरू की सेवा में ही रहता था।[19] परिणामस्वरूप उसे विद्या की प्राप्ति होती थी।[20] गुरू की शिष्य के प्रति सदा अभिन्नता रहती थी वह शिष्य के साथ पुत्रवत् व्यवहार करता था।[21] कोई भी शिक्षक विद्या को छिपाता नहीं था, बल्कि वह उसे धरोहर समझता था।[22]

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. कठोपनिषद् 11.9, मुष्ठकोपनिषद्, 1.2.3।
2. महाभारत,5.33.33।
3. छांदोग्य उपनिषद्, 3.11.5.6, बृहदारण्यक उपनिषद्, 6.3.12।
4. अष्टाध्यायी, 4.4.62।
5. ऋग्वेद 10.71.9; 9.1112.1।
6. मालविकाग्निमित्रम्, पृष्ठ 19।
7. वहीं, 2.9।
8. अथर्ववेद, 11.5.84।
9. वहीं , 115.17, मत्स्य पुराण, 25.23।

Scanned by CamScanner

10. छांदोग्य उपनिषद्, 4.3.5, 4.10.2, 4.4.5; शतपथ ब्राह्मण,3.6.2.15।
11. शतपथ ब्राह्मण, 11.5.4.5।
12. अथर्ववेद, 6.108.2, 133.3; मनुस्मृति, 2.192–201।
13. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1.2.6.13।
14. गौतम धर्मसूत्र, 3.1.15।
15. अथर्ववेद, 11.3.15।
16. मत्स्य पुराण, 211–21।
17. महाभारत, 5.36.52।
18. मनुस्मृति, 2.191।
19. मिश्र, जयशंकर, ग्यारहवीं सदी का भारत, पृष्ठ 168।
20. मनुस्मृति, 2.218।
21. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1.2.8।
22. कृत्यकलपतरू, ब्रह्मचारीकांड, पृष्ठ 240, 242।

Scanned by CamScanner